ISSN : 2582-6360

विश्व दीप दिव्य संदेश

मासिक शोध पत्रिका

वर्ष 29 | अंक 04 विक्रम संवत् 2081 अप्रैल 2025 | पृष्ठ 34

संरक्षक : विश्वगुरु महामण्डलेश्वर परमहंस श्री स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी

नव संवत्सर

विशेषांक

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(राजस्थान संस्कृत अकादमी एवं
जगद्गुरुरामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

ISSN : 2582-6360

विश्व दीप दिव्य संदेश

मासिक शोध पत्रिका

वर्ष 29 | अंक 04 विक्रम संवत् 2081 अप्रैल 2025 | पृष्ठ 34

परामर्शदाता
प्रो. बनवारीलाल गौड़
प्रो. कैलाश चतुर्वेदी
डॉ. शीला डागा
प्रो. (डॉ.) गणेशीलाल सुथार

प्रधान सम्पादक
श्री सोहन लाल गर्ग
श्री एम.एल. गर्ग

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

सह-सम्पादक
डॉ. रघुवीर प्रसाद शर्मा
तिबोर कोकेनी
श्रीमती अन्या वुकादिन

- प्रमुख संरक्षक -
परम महासिद्ध अवतार श्री अलखपुरी जी
परम योगेश्वर स्वामी श्री देवपुरी जी

- प्रेरणास्त्रोत -
भगवान् श्री दीपनारायण महाप्रभुजी

- संस्थापक -
परमहंस स्वामी श्री माधवानन्द जी

- संरक्षक -
विश्वगुरु महामण्डलेश्वर परमहंस
श्री स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी

- प्रबन्ध सम्पादक -
महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(राजस्थान संस्कृत अकादमी एवं जगद्गुरुरामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Website : vgda.in | **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram | **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org

अनुक्रमणिका

1.	सम्पादकीय	डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा	3
2.	YOGA SUTRAS OF PATANJALI	Swami Maheshwaranandapuri	4
3.	नव संवत्सर	पण्डित सरयूप्रसाद द्विवेदी	12
4.	राष्ट्रोपनिषत्	स्व. डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर	31

विश्वदीप दिव्य संदेश पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क **800/- रूपये**

खाता संख्या : 5013053111

IFS Code : KKBK0003541

मुद्रण : **कन्ट्रोल पी**, जयपुर - मो. : 9549666600

सम्पादकीय

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित मासिक शोधपत्रिका का वर्ष 2025 का चतुर्थ अंक आपके करकमलों में अर्पित करते हुए अत्यधिक हर्ष का अनुभव हो रहा है। भारतीय धर्म-संस्कृति के शोधलेखों का यह संग्रह विद्वानों द्वारा सराहा जा रहा है। यह अंक नव संवत्सर विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। विद्वानों द्वारा नियमित भेजे जा रहे शोधलेख हमारा मनोबल बढ़ा रहे हैं व पत्रिका के महत्त्व को भी आलोकित कर रहे हैं। पूर्व अंकों में सभी उच्चस्तरीय विद्वानों के लेख प्रकाशित हुए हैं।

इसमें सर्वप्रथम महामण्डलेश्वर स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी द्वारा लिखित YOGA SUTRAS OF PATANJALI शोध लेख में पातंजलयोगसूत्र के प्रतिपाद्य की आधुनिक सन्दर्भ में उपयोगिता दर्शायी गयी है। जयप्रकाश शर्मा द्वारा प्रस्तुत पंडित सरयूप्रसाद द्विवेदी लिखित **'नव संवत्सर'** लेख ममें नव संवत्सर चक्र को स्पष्ट किया है । महान् ज्योतिषाचार्य एवं तन्त्राचार्य पण्डित श्री सरयूप्रसाद जी एक बहुत ही बड़े विद्वान् थे। श्री सरयू प्रसाद द्विवेदी जी भगवान् शिव तथा चण्डिका व दुर्गा देवी के अनन्य उपासक थे। पंडित द्विवेदी जी ने अपने जीवन काल में बहुत से ग्रन्थों की रचना की। उनमें संग्रह शिरोमणि, समाचार प्रकारा, वर्ण बीज प्रकाश, सप्तशतीसर्वस्वम्, मातृका स्तुति, पादुका पेन्चकर, सर्वार्थकल्पद्रुम, परशुराम सूत्रवृत्ति, साधक सर्वस्वम्, दीक्षापद्धति, ललितासहस्रनामवृत्ति, तथा आगम रहस्य प्रमुख है। पण्डित सरयू प्रसाद द्विवेदी जी जयपुर के महाराजाधिराज श्री सवाई रामसिंह के आश्रय में कई वर्ष रहे तथा ग्रन्थों की रचना की। इनका एक पुत्र था जिनका नाम दुर्गाप्रसाद द्विवेदी था। वर्तमान में गणगौरी बाजार जयपुर में स्थित सरस्वती भवन में द्विवेदी जी निवास करते थे तथा इसी के स्थित श्री वीरेश्वर भवन में रहने वाले श्री वीरेश्वर शास्त्री जी इनके शिष्य थे । प्रस्तुत लेख पण्डित सरयूप्रसाद द्विवेदी जी के प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थ 'संग्रह शिरोमार्ग से उद्धृत है। इस लेख में द्विवेदी जी ने संवत्सर पर विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। संवत्सरों के प्रकार, उनके नाम, उनमें होने वाले लाभ-हानि, प्रत्येक संवत्सर में मिलने वाले शुभ-अशुभ फल का वर्णन है। इसके साथ ही अयन, ऋतु, मास का उल्लेख करते हुए उनके स्वामी के नाम का भी उल्लेख किया है। साथ ही अधिमास तथा क्षयमास न तिथिचक्र, सारिणी को भी दर्शाया है।

अन्त में स्व. डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर के **'राष्ट्रोपनिषत्'** के कतिपय पद्य प्रकाशित किये गये हैं, जो गुरुशिष्यपरम्परा के गौरव को प्रदर्शित करने के साथ साथ आत्मचिन्तन की प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं।

आशा है, सुधी पाठक इन्हें रुचिपूर्वक हृदयंगम करने में अपना उत्साह पूर्ववत् बनाये रखेंगे ।

शुभकामनाओं सहित....

-डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

YOGA SUTRAS OF PATANJALI

A Guide to Self-knowledge

Mahamandleshwar Paramhans
Swami Maheshwaranandapuri

विभूति पादः

VIBHŪTI-PĀDAḤ

तस्यप्रशान्तवाहिता सभस्कारात्। ॥ १० ॥

10. tasyapraśānta-vāhitāsaṃskārāt

tasya – whose
praśānta – peaceful, calm
vāhitā – river
saṃskāra – impression

The flow of the stillness of mind gradually becomes a permanent impression.

As the calmness of mind without thought waves has become a permanent imprint (*samskāra*) in the consciousness through continuous practice, the mind becomes fluid and at the same time motionless – just as a swan glides on the water and does not seem to move. The meditator's consciousness flows in perfect peace and harmony. In what direction does it flow? Toward the Self, toward the *ātma*, and toward God.

The mirror of consciousness, which in "normal" life is polluted and blinded by the dust of thoughts, emotions, desires, cravings, has cleared and we can now see our true face, our true self, in it.

In this deep meditation the meditator is filled with light and bliss. They could remain like this for hours, and feel no fatigue, no pain in the body, nor desire for sleep. Instead of sleeping, they are immersed in *Yoga Nīdra*, the "conscious sleep of the yogi".

Mahāprabhujī said in his *bhajan* "*yogi jano ki yoga nidra*" – in sleep the sun rises. What did he mean by this? That although the body outwardly looks like that of a sleeping person, the consciousness is wide awake and crystal clear.

Two prerequisites are necessary for this: āsana*siddhi* (body control and mastery of the meditation seat) and *chitta-vritti-nirodha*(stillness of the thought waves). For this, regular *prānāyāma* is an important preliminary practice. Some do not want to practice *prānāyāma*or *mantra* because it "annoys" them. This means that the mind is still very restless and uncontrolled and needs to be worked on. It is easier to get into deep meditation through *prānāyāma*. Gentle prānāyāma*,* such as *UjjāyiPrānāyāma*and *NādiShodhanaPrānāyāma*(as described in the book "Yoga in Daily Life – The System"), calms the autonomic nervous system and improves circulation. The brain and organs are supplied with more oxygen. The slower the breathing becomes, the deeper the concentration and inner peace. In *samādhi,* breathing even comes to an almost complete standstill.

As was said in the previous *sūtra,* when the rising impressions are covered by the imprint of tranquillity, one sinks deeper and deeper into meditation. In other words, the yogi rises higher and higher into the highest consciousness.

But it would still be a mistake to think that the goal has now been reached. The aspirant has realised the Self, but has not yet united with it, has not yet dissolved in it. *Vrittis*and *samskāras*are at rest, but still there.

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्यसमाधिपरिणामः ॥ ११ ॥

11. sarvārthata-ikāgratayoḥkṣaya-udayaucittasyasamādhi-pariṇāmaḥ

sarva – everyone

artha – goal, related to
ekāgratā – focus
kṣaya–diminution
daya – ascend
citta– consciousness
samādhi – supreme consciousness
pariṇāma – transformation

By diminishing the distraction and keeping the mind focused on a single point, the transformation to higher consciousness can begin (*samādhi-parināma*).

What is the *dharma* or function of consciousness (*chitta*)? The *dharma* of *chitta*is thinking (*chintana*). The continuous thinking, pondering, brooding and deliberating creates "waves" in the mind, or*chitta-vrittis*. By quieting the *chitta-vrittis* in meditation, the mind becomes *ekāgratā*, selectively focused and concentrated on a target object. This is the first step toward *samādhi*.

In this state of consciousness, external and internal disturbances can no longer harm the meditator. Why? Because there are no more *chitta-vrittis,*and therefore no reaction to disturbances and distractions.

Then the self recognisesits reality in the inner mirror of the mind – this is the "self-knowledge" or "enlightenment". But the path does not end there! There are different stages of *samādhi*, and we are still on the lowest rungs.

ततः पुनःशान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥ १२ ॥

12. tataḥpunaḥ-śāntoditautulya-pratyayaucittasyaekāgratā-pariṇāmaḥ

tataḥ – accordingly
punaḥ – again
śānta – calmed, attained inner calm
udita – to arise, ascended

tulya – like
pratyaya – perception, acceptance
citta – consciousness
ekāgratā – focus, centre point
pariṇāma – transformation

When the rising and receding waves in the mind balance each other out, the alignment of consciousness to one-pointed concentration (*ekāgrāta-parināma*) takes place.

Through the practice of *dhāranā*and *dhyāna,* the mind becomes increasingly and gradually filled only with waves of harmony, inner peace and feelings of bliss. When the consciousness flows continuously in the direction of the object of meditation and finally unites with it, a fundamental change in consciousness takes place and the transformation to *samādhi*has begun.

एतेन भूतेन्द्रियेषुधर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥ १३ ॥

13. etenabhūtendriyeṣu dharma-lakṣaṇāvasthā-pariṇāmāvyākhyātāḥ

etena – through this
bhūta – the elements
indriya – sense faculty
dharma – task, principle, characteristic
lakṣaṇa – characteristic, attribute
avasthā – situation, condition
pariṇāmā– transformation
vyākhyā – explanation, commentary

This explains the changes in the elements and their perception in terms of their nature, characteristics and states.

The transformation in consciousness also causes a change in the perception of the external world. Likewise, matter itself is also subject to change in its properties,

characteristics and states over time.

How can we imagine this? For example, when clay is formed into a vase, the shape, characteristics and condition of the clay change. The vase has different characteristics than the raw clay. If water is poured on the earth, it seeps away. But if we pour water into a vase made of fired clay, it does not flow out. So, a distinct change in the object has occurred. However, a new change in the state and characteristics of the vase can occur at any time, for example, if it breaks. Each change is only an intermediate state. No state is for eternity.

Change and evolution in the outer world and in consciousness are natural processes and inevitable. Therefore, don't get stuck and don't hold on to anything. Let it flow, let it come and let it go.

The self, however, which is the observer and witness of all states and changes, never changes.

शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपातीधर्मी ॥ १४ ॥

14. śāntoditāvyapadeśya-dharmānupātīdharmī

śānta – calmed
udita– arising
avyapadeśya – the unmanifest
dharma – order, law, duty
anupātī – based on, following
dharmī – bearer of the quality, substance

The transformations, be they dormant (= past), active (= present) or non-manifest (= future), are based on the carrier of the qualities (*dharmī*).

Patanjali speaks here of the three times, past, present and future, which are closely intertwined. In the events of the past, the present situation has already been created, and the events of the present shape the future. Both past and future exist interwoven with the present.

Dharmi here refers to the "observer", who knows that everything is in flux and impermanent. The change is only external, not in relation to the essence and reality. An example: a piece of gold is made into a piece of jewellery by the goldsmith. The form has changed, but in fact it is always just gold. However, as long as the "observer" identifies with the properties, they are bound to them.

When all the changes have taken place, the qualities dissolve. As already explained in Part 1, *Samādhi-Pāda, sūtra*2, this is illustrated in the parable of fire in wood: in a piece of wood, fire exists as a dormant property. Through friction, the fire is awakened. As soon as the wood is burned, the fire falls asleep again and goes out. Another example: in a storm, the waves in the ocean go up – if the storm calms, the tides also calm. Where do the waves come from? From the ocean. And where did they go? Back into the ocean. Similarly, it happens with our *vrittis*. They rise, create agitation, and after some time they calm down again.

Patanjali wants to tell us here: look deep inside yourself, how many qualities exist in you without you being aware of it? The forces that sleep in the subconscious are like a "black box". We don't know what kind they are. They are still dormant, but that does not mean they are harmless. Their energy can also be destructive.

We are literally sitting on a "bomb" that could go off at any time. Or, to use another image: we are in a boat on a stormy sea. How many storms exist within us? How many surges of emotions– anger, rage, love, jealousy, desires, greed, passion – rise up again and again and overtake us? But as long as such "storms" and "surges" exist within us, we cannot attain *samādhi.*

क्रमान्यत्वंपरिणामान्यत्वेहेतुः ॥ १५ ॥

15. kramānyatvaṃpariṇāmānyatvehetuḥ

krama – sequence, succession
anyatva – diversity

pariṇāma – change, transformation
hetuḥ – cause, reason

The differences in the transformations are based on the differences in the sequence.

Sometimes students ask me, "I am only one – why do I have so many problems?" Patanjali explains the reason. One cause can produce several effects over time. Take a cotton plant as an example. From the field to the store where you buy a T-shirt, cotton goes through several stages: harvesting, cleaning, spinning, sewing, transportation, etc. Each stage brings a change, different properties and states, a different name, a different function. Each person is also in multiple relationships: a woman is at once a daughter, a sister, a mother, an aunt, a grandmother, etc. In reality, she is only one person.

But the cause of all conditions is in reality only one: *yourself*. If your identification with yourself is dissolved, all problems are solved.

Through constant practice and perfection of*samyama* – concentration, meditation and *samādhi* – consciousness expands, and the meditator gains knowledge and insight into levels that are closed to waking consciousness. In the following *sūtras,* Patanjali enumerates the amazing powers (*siddhis*) that can be attained through *samyama.*

परिणामत्रयसभयमादतीतानागतज्ञानम् ॥ १६ ॥

16. pariṇāma-traya-saṃyamād-atītānāgata-jñānam

pariṇāma – change, transformation
traya – threefold, tripartite
saṃyama (saṃyamāt) – collection, discipline, control
atīta – past, passed away
anāgata – future
jñānam – knowledge

***Samyama*on the three types of transformations gives knowledge of the past and future.**

The three kinds of transformations mean the changes in the state of an object or person over time. *Parināma*also means result. As a result of the control and immobilisation of the *vrittis*combined with concentration on the passage of time, the yogi in meditation receives knowledge of the past and future.

You don't need an oracle, astrologers or psychics to tell you the future. Explore your subconscious in meditation. Meditation is the only direct access to the subconscious. The best method for this is the technique of "*Self-Inquiry Meditation"*(see the step-by-step instructions in the book "Yoga in Daily Life – The System").

Dive deep into your inner world, meditate, and see what is going on inside you. The waves, the qualities, do not exist by themselves without *dharmi*, the carrier of the qualities. The problems of the past, present and future would not be there if *you* werenot there. Your past and your past lives existed only because *you* were there. There will be a future for you because *you* will be there. That is, as long as you exist as an individual, these states also exist. But once your individual consciousness dissolves in the divine consciousness, everything is solved. "No bamboo, no flute, no noise," says a well-known saying.

नव संवत्सर

लेखक - पण्डित सरयूप्रसाद द्विवेदी

प्रस्तोता - जयप्रकाश शर्मा
पाण्डुलिपि एवं लिपि विशेषज्ञ
उपनिदेशक
पद्मश्री नारायण दास संग्रहालय एवं पाण्डुलिपि शोध संस्थान, जयपुर

मूलग्रन्थान्निबन्धाच्च वाक्यान्याहृत्य यत्नतः ।
बालबोधाय कुर्वेऽहं सत्सङ्ग्रहशिरोमणिम् ।। ३८।।

अथ कालाङ्गत्वेन संवत्सरायनर्तुमासादीनां ज्ञानम् तत्रादौ [**संवत्सरविचारः-]**

विक्रमादित्यशाकस्य पञ्चत्रिंशाधिके शते ।
शोधिते जायते शाकश्चैत्रशुक्लादितः क्रमात् ।।

विक्रम संवत्सर में १३५ घटाने पर शालिवाहन शक और शुक्ल-चैत्रादि से वर्ष-संख्या प्रारम्भ होगी।

मुहूर्त्तगणपतौ -

शककालः पृथक्संस्थो द्वाविंशत्या हतस्त्वथ ।
भूनन्दाख्यब्धियुग्भक्तो बाणशैलगजेन्दुभिः ।।

लब्धियुग्विहृतः षष्ट्या शेषे स्युर्गतवत्सराः ।
बार्हस्पत्येन मानेन प्रभवाद्याः क्रमादमी ।।
रेवाया उत्तरे तीरे संवन्नाम्ना च विश्रुतः ।।

मुहूर्त्तगणपति के अनुसार -

२२गुणित वर्तमान शक में ४२९१ को जोडकर १८७५ से भाग दे एवं भागफल को वर्तमान शक में जोड दे और योगफल में ६० का भाग देवे, तो शेष गत संवत्सर और शेष में एक जोडने पर प्रभवादि वर्तमान

संवत्सर होगा। यही रेवा नदी के उत्तरी भाग में संवत् नाम से जाना जाता है।

बार्हस्पत्यमाने श्रीपतिः -

तपसि खलु यदासावुद्गमं याति मासि, प्रथमलवगतः सन्वासवे वासवेज्यः ।
निखिलजनहितार्थं वर्षवृन्दे वरिष्ठः, प्रभव इति स नाम्ना जायतेऽब्दस्तदानीम् ।।

चान्द्रमान से माघ मास में धनिष्ठा के प्रथम चरण में जब गुरु का प्रवेश होता है, तब साठ संवत्सर वर्षों में प्रथम प्रभव नाम संवत्सर वर्ष आरम्भ होता है, इसके उदय होने पर प्राणिमात्र का कल्याण होता है ।

वत्सरनामानि मुहूर्त्तगणपतौ, तत्र ब्रह्मविंशतिः-

प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः ।
अङ्गिराः श्रीमुखो भावो युवा धाता तथेश्वरः ।।

बहुधान्यः प्रमाथी च विक्रमो वृषवत्सरः ।
चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवोऽव्ययः ।।
ब्रह्मणो विंशतिस्त्वत्र सृष्टिरेव प्रजायते ।।

१. प्रभव, २. विभव, ३. शुक्ल, ४. प्रमोद, ५. प्रजापति, ६. अङ्गिरा, ७. श्रीमुख, ८. भाव, ९. युवा, २०. धाता, ११. ईश्वर, १२. बहुधान्य, १३. प्रमाथी, १४. विक्रम, १५. वृष, १६. चित्रभानु, १७. सुभानु, १८. तारण, १९. पार्थिव, २०. अव्यय नाम से प्रसिद्ध इन बीस संवत्सरों को ब्रह्मविंशति कहते हैं, इनमें सृष्टि होती है।

अथ विष्णुविंशतिः

सर्वजित् सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः ।
नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ ।।

हेमलम्बी विलम्बी च विकारी शार्वरीप्लवः ।
शुभकृत् शोभकृत्क्रोधी विश्वावसुपराभवौ ।
विष्णोरेते च विंशत्याः पालना तत्र जायते ।।

२१. सर्वजित्, २२. सर्वधारी, २३. विरोधी, २४. विकृति, २५. खर, २६. नन्दन, २७. विजय, २८. जय, २९. मन्मथ, ३०. दुर्मुख, ३१. हेमलम्बी, ३२. विलम्बी, ३३. विकारी, ३४. शार्वरी, ३५. प्लव, ३६. शुभकृत्, ३७. शोभकृत्, ३८. क्रोधी, ३९. विश्वावसु, ४०. पराभव, ये बीस संवत्सर विष्णुविंशति कहे जाते हैं। इनमें सृष्टि का पालन होता है।

अथ रुद्रविंशतिः-

प्लवङ्गः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत् ।
परिधावी प्रमादी स्यादानन्दो राक्षसो नलः ॥

पिंगलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थी रौद्रदुर्मती ।
दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः ॥

रुद्रस्यैते च विंशत्या नामतुल्यफलप्रदाः ।
षष्टिः संवत्सराश्चैते क्रमेण परिकीर्त्तिताः ॥

४१. प्लवंग, ४२. कीलक, ४३. सौम्य, ४४. साधारण, ४५. विरोधकृत्, ४६. परिधावी, ४७. प्रमादी, ४८. आनन्द, ४९. राक्षस, ५०.नल, ५१ .पिंगल, ५२.कालयुक्त, ५३. सिद्धार्थ, ५४. रौद्र, ५५. दुर्मति,५६.दुन्दुभि, ५७.रुधिरोद्गारी, ५८. रक्ताक्ष, ५९. क्रोधन, ६०.क्षय, ये संवत्सर रुद्रविंशति के वर्ष हैं, नाम के अनुसार इनका फल होता है ।।४७-४९।।।

संवत्सर-सारिणी

ब्रह्मविंशति सृष्टि वर्ष	विष्णुविंशति पालन वर्ष	रुद्रविंशति संहार वर्ष
१. प्रभव	२१. सर्वजित्	४१. प्लवंग
२. विभव	२२. सर्वधारी	४२. कीलक
३. शुक्ल	२३. विरोधी	४३. सौम्य
४. प्रमोद	२४. विकृति	४४. साधारण
५. प्रजापति	२५. खर	४५. विरोधकृत्
६. अंगिरा	२६. नन्दन	४६. परिधावी
७. श्रीमुख	२७. विजय	४७. प्रमादी

८. भाव	२८. जय	४८. आनन्द
९. युवा	२९. मन्मथ	४९. राक्षस
१०. धाता	३०. दुर्मुख	५०. नल
११. ईश्वर	३१. हेमलंबी	५१. पिंगल
१२. बहुधान्य	३२. विलंबी	५२. कालयुक्त
१३. प्रमाथी	३३. विकारी	५३. सिद्धार्थ
१४. विक्रम	३४. शार्वरी	५४. रौद्र
१५. वृष	३५. प्लव	५५. दुर्मति
१६. चित्रभानु	३६. शुभकृत्	५६.दुन्दुभि
१७.सुभानु	३७. शोभकृत्	५७.रूधिरोद्गारी
१८.तारण	३८. क्रोधी	५८. रक्ताक्ष
१९. पार्थिव	३९. विश्वावसु	५९. क्रोधन
२०. अव्यय	४०. पराभव	६०. क्षय

एतेषां फलं ग्रन्थान्तरे -

प्रभवाद् द्विगुणं कृत्वा त्रिभिर्न्यूनं तु कारयेत् ।
सप्तभिस्तु हरेद्भागं शेषं ज्ञेयं शुभाशुभम् ॥

एकचत्वारि दुर्भिक्षं पञ्चद्वाभ्यां सुभिक्षकम् ।
त्रिषष्ठे च समं ज्ञेयं शून्ये पीडा न संशयः ॥

प्रभवादि संवत्सर संख्या को दूना कर ३ घटाकर ७ से भाग देकर शेषांक संख्या से फल जानें। १,४ से दुर्भिक्ष, २,५ से सुभिक्ष, ३,६ से सम, शून्य से पीडा होती है।

अथ वत्सराणां युगव्यवस्था, तत्फलं च बृहत्संहितायां वराहः -

गतानि वर्षाणि शकेन्द्रकाला, -द्धतानि रुद्रैर्गुणयेच्चतुर्भिः ।
नवाष्टपञ्चाष्टयुतानि कृत्वा, विभाजयेच्छून्यशरागरामैः ॥

फलेन युक्तं शकभूपकालं, संशोध्य षष्ट्यां विषयैर्विभज्य ।
युगानि नारायणपूर्वकाणि, लब्धानि शेषाः क्रमशः समाः स्युः ॥

वराह के मतानुसार वर्तमान वर्ष में संवत्सर का ज्ञान -

वर्तमान शक-वर्ष और ४४ के गुणनफल व ८५८९ के योगफल में ३७५०का भाग देने पर जो लब्धि राश्यादि प्राप्त होगा, इसके प्रथम स्थान में वर्तमान शकवर्ष जोड़ने पर गुरु का षष्टिवर्षात्मक वर्तमान वर्ष होगा। प्रथम स्थान को ६० से संशोधन करने पर अर्थात् ६० का भाग देने पर लब्धि षष्टिवर्षात्मक व्यतीत संवत्सर और शेष वर्तमान षष्टिसंवत्सरात्मक वर्षों में गत संवत्सर और अग्रिम संवत्सर वर्तमान वर्ष में संवत्सर होगा। शेष संवत्सरात्मक गुरु के राश्यादि मान को ५ से भाग देने पर लब्धि गत नारायणादि १२ युग व शेष अग्रिम युग का अवयव गतवर्ष और गतवर्षादि को ५ में घटाने पर वर्तमान युग का भोग्य वर्षादि होगा। यह उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा। जैसे -

शक-वर्ष १९१३ में संवत्सर व ५ वर्षात्मक युग के ज्ञान का प्रकार -
१९१३४४४+८५८९ = ९२७६१
९२७६१ / ३७५० = २४रा०/२२अं०/५क०/१७वि० आदि।

इसको वर्तमान शक १९१३ में जोड़ने पर योगफल १९३७रा०/२२अं०/५क०/१७वि०/वर्तमान गुरु का गत राश्यादि मान हुआ। यह प्रथम स्थान ६० से अधिक होने पर ६० से भाग देने पर लब्धि = ३२ गत ६० संवत्सरात्मक संख्या होगी और शेष १७ रा०/२२ अं०/५ क०/ १७ वि० यह ६० संवत्सरों में १७ वाँ गत संवत्सर सुभानु और वर्तमान संवत्सर अठारहवाँ तारण हुआ, पूर्वशेष के प्रथम स्थान १७ में ५ का भाग देने पर लब्धि ३, यह गत युगमान इन्द्र और वर्तमान युगमान हुतास हुआ।
नोट - यह गुरु के मध्यम गति के मान से गणना है ।

एकैकमब्देषु नवाहतेषु दत्वा पृथक् द्वादशकं क्रमेण ।
हृत्वा चतुर्भिर्वसुदेवताद्यान्युडूनि शेषांशकपूर्वमब्दम् ।।

प्रथम स्थान के अंकों को ९ से गुणा करें, गुणनफल में १२ से भाग देने पर प्राप्त लब्धि को प्रथम स्थान में जोड़ दें। योगफल के प्रथम स्थानीय राश्यंक को ४ से भाग देने पर लब्धि धनिष्ठादि गत-नक्षत्र, शेष वर्तमान नक्षत्र सम्बन्धी कार्तिकादिक वर्ष का भुक्त अवयव होगा। यह पूर्व श्लोकार्थ में भी लिखा जा चुका है।

शेष वर्षादि (१७/२२/५/१७) (यह चिह्न)९= १५९/१८/४७/३३= (१) एवं- (१७/२२/५/१७)÷१२= १/१४/२०/२६ को (१) में जोड़ने पर १६१/३/८ हुआ, इसके प्रथम स्थान की संख्या चरणात्मक हुई, इसके चरणात्मक प्रथमस्थानस्थ १६१ को ४ से भाग देने पर लब्धि ४०, शेष १/३/८ हुआ। यह लब्धि का स्थानाङ्क ४० गत नक्षत्र-योग हुआ। इसको २७ का भाग देने पर शेष १३ वाँ धनिष्ठादिगत पुष्य नक्षत्र व वर्तमान श्लेषा सम्बन्धी गुरु का वर्ष होगा। जिसका शेष = १/३/८ है। यह वर्तमान श्लेषा सम्बन्धी कार्त्तिकादिक वर्ष का भुक्त मान होगा ।

विष्णुः सुरेज्यो बलभिद्धुताश, स्त्वष्टोत्तरप्रोष्ठपदाधिपश्च ।
क्रमाद्युगेशाः पितृविश्वसोमाः, शक्रानलाख्याश्विभगाः प्रदिष्टाः ।।

५ वर्षों के एक युगमान से षष्टिवर्षात्मक गुरु वर्ष में (६०÷५) =१२ युग होते हैं। क्रमशः इनके १. विष्णु, २. गुरु, ३. इन्द्र, ४. अग्नि, ५. प्रजापति (त्वष्टा), ६. अहिर्बुध्न्य, ७. पिता, ८. विश्व, ९. सोम, १०. इन्द्राग्नि, ११. अश्विन्, १२. सूर्य स्वामी होते हैं।

संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरोऽर्क, इदादिकः शीतमयूखमाली ।
प्रजापतिः स्यादनुवत्सरः स्या, दिद्वत्सरः शैलसुतापतिश्च ।।५६।।

१ युगीय ५ वर्षों के पृथक् पृथक् नाम व देवता निम्न हैं-

१. संवत्सर, २. परिवत्सर, ३. इदावत्सर, ४. अनुवत्सर, ५. इद्वत्सर, ये नाम और क्रमशः अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, प्रजापति व रुद्र वर्षों के स्वामी हैं ।

वृष्टिः समाद्ये प्रमुखे द्वितीये, प्रभूततोया कथिता तृतीये ।
पश्चाज्जलं मुञ्चति यच्चतुर्थं, स्वल्पोदकं पञ्चममब्दमुक्तम् ।।

प्रथम संवत्सर वर्ष में समान वृष्टि होती है (श्रावण से कार्तिक तक के मासों में समान वृष्टि होती है)। द्वितीय परिवत्सर के प्रथम भाग में ही वृष्टि होती है (मात्र श्रावण-भाद्रपद में)। तृतीय इदावत्सर में चारों मासों में प्रचुर वृष्टि होती है। अनुवत्सर के अन्त में आश्विन, कार्तिक मास में प्रबल वृष्टि होती है। इद्वत्सर में थोड़ा जल होता है।

चत्वारि मुख्यानि युगान्यथैषां , विष्णिवन्द्रजीवानलदैवतानि ।
चत्वारि मध्यानि च मध्यमानि , चत्वारि चान्त्यान्यधमानि विद्यात् ॥

इन द्वादश युगों में प्रथम चार युग मुख्य एवं उत्तम फल देने वाले हैं। क्रमशः इनके विष्णु-इन्द्र जीव-अनल (अग्नि) देवता हैं। बीच के चार मध्यम फल देने वाले युगों के त्वष्टा, अहिर्बुध्न्य, पितर व विश्वेदेव देवता हैं। अन्त के चार युग अधम फल देने वाले हैं। इनके सोम, इन्द्राग्नि, अश्विन् व भग देवता हैं ।

आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रपन्नो, माघे यदा यात्युदयं सुरेज्यः ।
षष्टयब्दपूर्वः प्रभवः स नाम्ना, प्रवर्तते भूतहितस्तदाब्दः ।।
क्वचित्त्ववृष्टिः पवनाग्निकोपः, सन्तीतयः श्लेष्मकृताश्च रोगाः ।
संवत्सरेऽस्मिन्प्रभवे प्रवृत्ते, न दुःखमाप्नोति जनस्तथापि ।।

प्रथम वैष्णव युग के प्रभव नाम गुरु के संवत्सर वर्ष में कहीं-कहीं अवर्षण, प्रचण्ड वायुप्रकोप, अग्निभय, ईति-भीति और कफप्रधान रोग होता है। यह सार्वदेशिक फल नहीं है; क्योंकि सामूहिक जनसमुदाय को दुःखानुभूति नहीं होती है ।

तस्माद्द्वितीयो विभवः प्रदिष्टः, शुक्लस्तृतीयः परतः प्रमोदः ।
प्रजापतिश्चेति यथोत्तराणि, शस्तानि वर्षाणि फलानि चैषाम् ।।

दूसरा विभव संवत्सर, तीसरा शुक्लसंवत्सर, चौथा प्रमोद, पाँचवाँ प्रजापति । इनमें उत्तरोत्तर शुभत्व बढ़ता जाता है ।

निष्पन्नशालीक्षुयवादिसस्यां, भयैर्विमुक्तामुपशान्तवैराम् ।
संहृष्टलोकां कलिदोषमुक्तां, क्षत्रं तदा शास्ति च भूतधात्रीम् ।।६२।।

इन संवत्सरों में भूपति (राजा) धर्मनीति से प्रजापालन करते हैं, जिससे भूमि कामदुधा होकर शाल्यन्न, इक्षुरस, यव, गेहूँ, मसूर, चना, उड़द आदि प्रचुर मात्रा में (उत्पन्न करती) फलदायिनी हो जाती है। और प्रजा वैर-राग-द्वेष से मुक्त परस्पर सहयोग एवं सहानुभूति से प्रसन्नता की अनुभूति करती है। अधर्म, व्याधि, दारिद्रय, शोक, अकालमृत्यु प्रभृति कलि-दोषों से रहित राष्ट्र सन्तापोपद्रव-मुक्त रहता है ।

आद्येऽङ्गिराः श्रीमुखभावसाह्वौ , युवाथ धातेति युगे द्वितीये ।
वर्षाणि पञ्चैव यथा क्रमेण, त्रीण्यत्र शस्तानि समे परे द्वे ।।६३।।

द्वितीय बार्हस्पत्य युग में- प्रथम अङ्गिरा, द्वितीय श्रीमुख, तृतीय भावस, चौथा युवा, पाँचवाँ सुधाता, इनमें प्रथम तीन संवत्सर शुभ और अन्तिम दो (न शुभ, न अशुभ) सम हैं।

त्रिष्वङ्गिराद्येषु निकामवर्षी, देवो निरातङ्कभयाश्च लोकाः ।
अब्दद्वयेऽन्त्येऽपि समा सुवृष्टिः, किन्त्वत्र रोगाः समरागमश्च ।।

प्रथम के तीन (अङ्गिरा, श्रीमुख व भावस) संवत्सरों में इन्द्र यथेष्ट वर्षा देते हैं और लोक (संसार) आतङ्क, उपद्रव व अशान्ति के भय से मुक्त रहता है, अन्तिम दो संवत्सरों में समवृष्टि, सुभिक्ष होता है; किन्तु रोग व युद्ध से प्रजा भयभीत रहती है ।

शाक्रे युगे पूर्वमथेश्वराख्यं, वर्ष द्वितीयं बहुधान्यमाहुः ।
प्रमाथिनं विक्रममप्यतोऽन्य, द्वृषं च विद्यादुरुचारयोगात् ।।

आद्यं द्वितीयं च शुभे तु वर्षे, कृतानुकारं कुरुतः प्रजानाम् ।
पापः प्रमाथी वृषविक्रमौ तु, सुभिक्षदौ रोगभयप्रदौ च ।।

तीसरे ऐन्द्र युग में ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष नाम के गुरुचार में पाँच संवत्सर होते हैं। इनमें प्रथम दो (ईश्वर, बहुधान्य) वर्षों में लोक (सतयुग) के अनुसार धर्मानुष्ठान करते हैं व सुखी और दीर्घजीवी होते हैं। तीसरे प्रमाथी संवत्सर में पापाचार में प्रवृत्त प्रजा अनिष्ट फल भोगती है। वृष व विक्रम में सुभिक्ष (प्रचुर मात्रा में वृष्टि व अन्न की उपज) तो होता है; किन्तु रोग से प्रजा त्रस्त रहती है ।

श्रेष्ठं चतुर्थस्य युगस्य पूर्वं, यच्चित्रभानुं कथयन्ति वर्षम् ।
मध्यं द्वितीयं तु सुभानुसंज्ञं, रोगप्रदं मृत्युकरं न तच्च ॥

तारणं तदनु भूरिवारिदं ,सस्यवृद्धिमुदितं च पार्थिवम् ।
पञ्चमं व्ययमुशन्ति शोभनं, मन्मथप्रबलमुत्सवाकुलम् ।।

चौथे हुताश नामक युग में चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव एवं व्यय संवत्सर होते हैं। इनमें क्रमशः शुभ, मध्य, रोग, मृत्यु, सुवृष्टि से उत्तम सस्य-सम्पत्ति व राजतन्त्र सुखी रहता है। पाँचवें व्यय वर्ष में कामदेवोन्मत्तता, विवाहादि उत्सवों से मानसिक चञ्चलता बनी रहती है ।

त्वाष्टे युगे सर्वजिदाद्य उक्तः , संवत्सरोऽन्यः खलु सर्वधारी ।
तस्माद्विरोधी विकृतः खरश्च , शस्तो द्वितीयोऽत्र भयाय शेषाः ।।

पाँचवें त्वाष्ट नामक गुरु के युग में सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृत, खर संवत्सर होते हैं। इनमें दूसरा सर्वधारी तो शुभ, शेष चार अनिष्ट फल देने वाले हैं।

नन्दनोऽथ विजयो जयस्तथा, मन्मथोऽस्य परतश्च दुर्मुखः ।
कान्तमत्र युग आदितस्त्रयं, मन्मथः समफलोऽधमोऽपरः ।।

अहिर्बुध्न्य नामक छठे युग में नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख संवत्सर होते हैं। इनमें प्रथम तीन शुभ, मन्मथ सम व दुर्मुख अमङ्गलकारी है।

हेमलम्ब इति सप्तमे युगे , स्याद्विलम्बिपरतो विकारि च ।
शर्वरीति तदनुप्लवः स्मृतो, वत्सरो गुरुवशेन पञ्चमः ।।
ईतिप्रायः प्रचुरपवना वृष्टिरब्दे तु पूर्वे, मन्दं सस्यं न बहुसलिलं वत्सरेऽतोऽद्वितीये ।
अत्युद्वेगः प्रचुरसलिलः स्यात्तृतीयश्चतुर्थो ,दुर्भिक्षाय प्लव इति ततः शोभनो भूरितोयः ।।

सप्तम (पितृ) युग में- हेमलम्ब, विलम्ब, विकारी, शर्वरी, प्लव वर्ष होते हैं। इनमें प्रथम हेमलम्ब वर्ष में ईति-भय, प्रचण्ड वायु, अतिवृष्टि का भय, विलम्ब में थोड़ी सस्योत्पत्ति व बहुवर्षा, तीसरे विकारी में अत्यन्त अशान्ति व प्रचुर वर्षा, शर्वरी में दुर्भिक्ष, प्लव में शुभ व अधिक मात्रा में जल की वृष्टि होती है।

वैश्वे युगे शोभकृदित्यथाद्यः, संवत्सरोऽतः शुभकृद्द्वितीयः ।
क्रोधी तृतीयः परतः क्रमेण ,विश्वावसुश्चेति पराभवश्च ।।
पूर्वापरौ प्रीतिकरौ प्रजाना, मेषां तृतीयो बहुदोषदोऽब्दः ।
अन्त्यौ समौ किन्तु पराभवेऽग्निः, शस्त्रामयार्त्तिर्द्विजगोभयं च ।।

अष्टम वैश्व युग में - शोभकृत्, शुभकृत्, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव वर्ष होते हैं। इनमें प्रथम, द्वितीय प्रजाओं में प्रीति उत्पन्न करते हैं। तृतीय क्रोधी में असंख्य दुर्गुणों की उत्पत्ति, अन्त्य दो में समान फल; किन्तु पराभव में अग्नि, शस्त्र, रोग, भय से प्रजा त्रस्त रहती है तथा गो, ब्राह्मणों को विशेष भय की आशंका बनी रहती है।

आद्यः प्लवङ्गो नवमे युगेऽब्दः, स्यात्कीलकोऽन्यः परतश्च सौम्यः ।
साधारणो रोधकृदित्यथाब्दः , शुभप्रदौ कीलकसौम्यसंज्ञौ ।।

कष्टः प्लवङ्गो बहुशः प्रजानां, साधारणेऽल्पं जलमीतयश्च ।
यः पञ्चमो रोधकृदित्यथाब्द , श्चित्रं जलं तत्र च सस्यसम्पत् ।।

सोम नामक नवम युग में प्लवंग, कीलक, सौम्य, साधारण, विरोधकृत् संवत्सरों में दूसरा, तीसरा उत्तम फल देते हैं। प्रथम में स्वल्पवृष्टि, ईति आदि उपद्रवों से अनेकों प्रकार से प्रजा पीड़ित रहती है। पंचम रोधकृत् वर्ष में विचित्र ढंग से कहीं-कहीं पर वृष्टि व उत्तम सस्य की उत्पत्ति होती है ।

इन्द्राग्निदैवं दशमं युगं यत् ,तत्राद्यमब्दं परिधाविसंज्ञम् ।
प्रमाद्यथानन्दमतः परं यत् ,स्याद्राक्षसं चानलसंज्ञितं च ।।

परिधाविनि मध्यदेशनाशो ,नृपहानिर्जलमल्पमग्निकोपः ।
अलसस्तु जनः प्रमादिसंज्ञे , डमरं रक्तकपुष्पबीजनाशः ।।

तत्परः सकललोकनन्दनो , राक्षसः क्षयकरोऽनलस्तथा ।
ग्रीष्मधान्यजननोऽत्र राक्षसो , वह्निकोपमरकप्रदोऽनलः ।।

दशवें युगवर्ष के देवता इन्द्र व अग्नि हैं एवं प्रभावी, प्रमादी, विक्रम, राक्षस व अनल ये पाँच संवत्सर हैं। प्रभावी वर्ष में मध्य देश की हानि और उसके प्रधान पुरुष की मृत्यु, थोड़ी-सी वृष्टि व अग्निभय होता है, प्रमादी वर्ष में मनुष्यों में आलस्य की वृद्धि, शस्त्र कलह (युद्ध), लाल रंग वाले फूल व बीज का नाश, अर्थात् प्राणी में रक्त की न्यूनता प्रतीत होती है। विक्रम में समस्त प्राणी सुख व आनन्द का अनुभव करते हैं। राक्षस वर्ष में जनसंहार, अनल वर्ष में अग्नि व मृत्यु का भय होता है ।

एकादशे पिङ्गलकालयुक्त , सिद्धार्थरौद्राः खलु दुर्मतिश्च ।
आद्ये तु वृष्टिर्महती सचौरा , श्वासो हनूकम्पयुतश्च कासः ।।

यत्कालयुक्तं तदनेकदोषं , सिद्धार्थसंज्ञे बहवो गुणाश्च ।
रौद्रोऽतिरौद्रः क्षयकृत्प्रदिष्टो, यो दुर्मतिर्मध्यमहृष्टिकृत्सः ।।

एकादशवें आश्विन वर्ष में पिङ्गल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र व दुर्मति संवत्सर होते हैं। इनमें प्रथम पिङ्गल वर्ष में अतिवृष्टि, चोर, कास-श्वास, कँपकँपी (मलेरिया) जैसे भयंकर रोग का भय होता है। कालयुक्त

वर्ष में अनेक दोष लूट-पाट, हत्या, अत्याचार, अनाचार से प्रजा पीड़ित रहती है। सिद्धार्थ में गुणों की बहुलता, सद्व्यवहार, प्रभूत सम्पत्ति की वृद्धि से आनन्दानुभूति होती है। रौद्र में क्रूर व बीभत्स कार्यों से प्रजा की हानि होती है। दुर्मति में मध्यम वर्षा होती है, येन केन प्रकारेण लोक भरण-पोषण कर पाता है ।

भाग्ये युगे दुन्दुभिसंज्ञमाद्यं , सस्यस्य वृद्धिं महतीं करोति ।
उद्गारिसंज्ञं तदनुक्षयाय , नरेश्वराणां विषमा च वृष्टिः ॥

रक्ताक्षमब्दं कथितं तृतीयं , यस्मिन् भयं दंष्ट्रिकृतं गदाश्च ।
क्रोधं बहुक्रोधकरं चतुर्थं , राष्ट्राणि शून्यीकुरुते विरोधैः ॥

भाग्य नामक बारहवें युग में दुन्दुभि, अङ्गार, रक्ताक्ष, क्रोध, क्षय संवत्सर होते हैं। प्रथम में विशेष सस्यवृद्धि, द्वितीय में राजाओं-महापुरुषों का नाश व प्रचण्ड वृष्टि, तृतीय में विषाक्त दाँत वाले प्राणियों एवं रोग के भय से प्रजा त्रस्त रहती है। क्रोध से परस्पर उत्कट विरोध, अमानवीय व्यवहार से अभिजन छोड़कर प्रजा शरणाभिलाषिणी बन जाती है ।

क्षयमिति युगस्यान्त्यस्यान्त्यं बहुक्षयकारकं , जनयति भयं तद्विप्राणां कृषीबलवृद्धिदम् ।
उपचयकरं विट्शूद्राणां परस्वहृतां तथा , कथितमखिलं षष्ट्यब्दे यत्तदत्र समासतः ॥

अन्तिम बारहवें युग के अन्तिम पाँचवें क्षय वर्ष में बहुप्रकार से प्रजा का नाश, ब्राह्मणों को भय, कृषकों की वृद्धि, वैश्य, शूद्रादि का उपचय (उन्नयन), परधनापहारियों की बहुलता (वृद्धि) होती है। यह साठ वर्षात्मक संवत्सरों के सम्पूर्ण वृत्तान्त का प्रतिपादन है ।

अथायनांशज्ञानं ग्रन्थान्तरे -

वेदाब्धिवेद४४४हीनात्तु शकात्खरसभाजितात् ।
अयनांशा भवन्त्येते ब्रह्मपक्षाश्रिताः किल ॥।८५॥

वर्तमान शक में ४४४ घटावें और ६० से भाग दें, भागफल अंश व शेष अयनांश की कला होगी ॥।८५॥

अथायनज्ञानम्-

शिशिरपूर्वमृतुत्रयमुत्तरं , ह्ययनमाहुरहश्च तदामरम् ।
भवति दक्षिणमन्यदृतुत्रयं, निगदिता रजनी मरुतां च सा ।।

शिशिरादि तीन ऋतु (शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म), उत्तर अयन (उत्तरायण) देवताओं के दिन और शेष तीन ऋतु (वर्षा, शरद्, हेमन्त), दक्षिणायन देवताओं की रात्रि होती है, उत्तरायण को सौम्यायन व दक्षिणायन को याम्यायन भी कहते हैं।

अयन-चक्र

उत्तरायण	शिशिर ,माघ,फाल्गुन	वसंत ,चैत्र, वैशाख	ग्रीष्म ,ज्येष्ठ, आषाढ	देव-दिन
दक्षिणायन	वर्षा, श्रावण, भाद्रपद	शरद् ,आश्विन, कार्तिक	हेमन्त ,मार्गशीर्ष, पौष	देव-रात्रि

अथायनकृत्यमाह श्रीपतिः -

गृहप्रवेशत्रिदशप्रतिष्ठा , विवाहचौलव्रतबन्धपूर्वम् ।
सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं , यद्गर्हितं तत्खलु दक्षिणेच ।।

सौम्यायन में गृहप्रवेश, देवप्रतिष्ठा, विवाह, मुण्डन, यज्ञोपवीत आदि शुभ कार्य और दक्षिणायन में निन्दित, धर्मविरुद्ध कार्य किये जाते हैं।

अथ ऋतूनाह श्रीपतिः-

मृगादिराशिद्वयभानुभोगात् , षडर्त्तवः स्युः शिशिरो वसन्तः ।
ग्रीष्मश्च वर्षाश्च शरच्च तद्व, द्धेमन्तनामा कथितश्च षष्ठः ।।

मकर से धनु राशि तक सूर्य के दो-दो राशि-भोग से शिशिरादि छः ऋतु होते हैं।

ऋतुपतयो ग्रन्थान्तरे —

मारुतोऽग्निश्च स्वर्गेशो विश्वेदेवाः प्रजापतिः ।
सौम्यश्च षड्ऋनां हि पतयः परिकीर्त्तिताः ।।

वायु (मरुत्), अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेव, प्रजापति व सोम, ये शिशिरादि छः ऋतुओं के स्वामी होते हैं।

अथ मासमाह श्रीपतिः -

मधुस्तथा माधवसंज्ञकश्च , शुक्रः शुचिश्चाथ नभो नभस्यौ ।
तथेष उर्जश्च सहः सहस्यौ , तपस्तपस्याविति ते क्रमेण ।।९०।।

चैत्र से फाल्गुन तक मासों के क्रमशः पर्यायवाची - मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभ, नभस्य, ईष, उर्ज, सह, सहस्य, तप, तपस्य ये नाम हैं।

स्वनामनक्षत्रसमाननाथा , मासाश्च पक्षावपि दैवपित्र्यौ ।
उभौ निरुक्तौ खलु शुक्लकृष्णौ , शुभाशुभे कर्मणि तौ प्रशस्तौ ।।

नक्षत्रों के नाम से ही मासों के नाम का विधान है। जैसे **"चित्रानक्षत्रेण युक्ता या पूर्णिमा स चैत्रो मासः"** इस विग्रह के अनुसार ही चित्रा से चैत्र, विशाखा से वैशाख, ज्येष्ठा से ज्येष्ठ, पूर्वाषाढ से आषाढ, श्रवण से श्रावण, पूर्वाभाद्र से भाद्रपद, अश्विनी से आश्विन, कृत्तिका से कार्तिक, मृगशिरा से मार्गशीर्ष व पुष्य से पौष, मघा से माघ, उत्तराफाल्गुनी से फाल्गुन मास होते हैं। वर्ष में १२ मास, मास में शुक्ल-कृष्ण दो पक्ष होते हैं। इनमें शुक्ल (देव) पक्ष में शुभकार्य और कृष्ण (पितृ) पक्ष में अशुभ कार्य किये जाते हैं।

मास-ऋतु-ऋतुस्वामी-बोधक-चक्र

मास	**मास-संज्ञा**	**ऋतु**	**ऋतुपति**
चैत्र	मधु	वसंत	मारुत
वैशाख	माधव		
ज्येष्ठ	शुक्र	ग्रीष्म	अग्नि
आषाढ	शुचि		
श्रावण	नभ	वर्षा	इन्द्र
भाद्रपद	नभस्य		
आश्विन	ईष	शरद्	विश्वेदेव
कार्तिक	ऊर्ज		

मार्गशीर्ष	सह	हेमन्त	प्रजापति
पौष	सहस्य		
माघ	तप	शिशिर	सोम
फाल्गुन	तपस्य		

मासभेदमाह श्रीपतिः -

दर्शावधिं मासमुशन्ति चान्द्रं , सौरं तथा भास्करराशिभोगात् ।
त्रिंशद्दिनं सावनसंज्ञमार्या , नाक्षत्रमिन्दोर्भगणभ्रमाच्च ।।

सौर, चान्द्र, नाक्षत्र व सावन मासों के लक्षण - शुक्लप्रतिपदा से कृष्णपक्ष की अमावस्या तक ३० तिथियों का एक चान्द्रमास, सूर्य के एक राशि भोग को एक सौरमास, सूर्योदय से सूर्योदय पर्यन्त काल का एक सावन दिन होता है, ३० सावन दिन का एक सावन मास और चन्द्रमा के एक भगण-भोग (२७ सत्ताइस नक्षत्रों के) काल का एक नाक्षत्र मास होता है।

मासानां कृत्यं मुहूर्त्तगणपतौ -

सौरे कार्य विवाहादिग्रहचारादिकं तथा ।
सावने गर्भवृद्धयादि नाक्षत्रे मेघगर्भनम् ।।

सौरमास के अनुसार विवाहादि शुभकार्य और ग्रहसाधनादि पञ्चाङ्ग, सावन मास के अनुसार गर्भ (मास की गणना) वृद्धि देखी जाती है व नक्षत्र मास के अनुसार मेघ के गर्भ धारण से वृष्टि-समय का निर्देश करना चाहिए।

व्रतयज्ञादिकं चान्द्रे मासे परिणयः क्वचित् ।
चान्द्रस्तु द्विविधो मासो दर्शान्तः पूर्णिमान्तिमः ।।
देवार्थे पौर्णमास्यन्तो दर्शान्तः पितृकर्मणि ।।

चान्द्रमास में व्रत-यज्ञादि, देवपूजन, पितृ-कार्य व यथाकथञ्चित् विवाह भी कर सकते हैं। चान्द्रमास दो प्रकार का है- प्रथम पूर्णिमान्त, दूसरा अमान्त। प्रथम देवकार्य व द्वितीय पितृकार्य के लिए प्रशस्त है।

अथाधिमासो ग्रन्थान्तरे-

शाके बाणकराङ्गके विरहिते नन्देन्दुभिर्भाजिते ,
शेषे च त्रिमधौ च माधवशिवे ज्येष्ठेऽम्बरे चाष्टके ।
आषाढे नृपतौ नभेऽथ विशिखे भाद्रे च विश्वांशके ,
नेत्रे चाश्विनकेऽधिमासमुदितं शेषेऽन्यके स्यान्नहि ॥

श्लोक ९५ के नियमानुसार आनीत अधिमास प्रभा में उल्लिखित शकों से साम्यता नहीं है। अतः **'अस्य भावो पद्यनिर्मातुरधीनः' इति;** परन्तु कल्प में कल्पसूर्यमासोन कल्पचान्द्रमास, कल्पाधिमास होता है। इसे त्रैराशिक गणित से १ अधिमास-सम्बन्धि सौरमास = कल्पसौरमास ५१८४०००००० x१ (कल्पाधिमास १५९३३०००००) = ३२ मास, १६ दिन, ५ घटी (३८५५:१५९३३) ३२ मास, १६ दिन, ५ घटी सूर्यमास बीतने पर एक तिथ्यात्मक अधिमास होता है ।

अधिकमाससारिणी

१६०१ शालिवाहन शक से २०७३ पर्यन्त

ज्ये. १६०१	चैत्र. १६०४	श्राव. १६०६	आषा. १६०९	वैशा.१६१२	भाद्र.१६१४	आषा. १६१७
सं० १७३६	सं.१७३९	सं. १७४१	सं. १७४४			
ज्ये. १६२०	आषा. १६२२	श्राव. १६२५	आषा. १६२८	वैशा. १६३१	भाद्र. १६३३	आषा. १६३६
ज्ये. १६३९	आषा. १६४१	श्राव. १६४४	आषा. १६४७	वैशा.१६५०	भाद्र.१६५२	आषा. १६५५
ज्ये. १६५८	आषा. १६६०	श्राव. १६६३	आषा. १६६६	चैत्र. १६६९	भाद्र. १६७१	आषा. १६७४
ज्ये. १६७७	आषा. १६७९	श्राव. १९८२	ज्ये. १६८५	चैत्र. १६८८	श्राव. १६९०	आषा. १६९३
वैशा. १६९६	भाद्र. १६९४	श्राव. १७०१	ज्ये. १७०४	चैत्र. १७०७	श्राव. १७०९	आषा. १७१२
वैशा. १७१५	भाद्र. १७१७	श्राव. १७२०	ज्ये. १७२३	चैत्र. १७२६	श्राव. १७२८	आषा. १७३१
वैशा. १७३४	भाद्र. १७३६	श्राव. १७३९	ज्ये. १७४२	चैत्र. १७४५	श्राव. १७४७	आषा. १७५०
वैशा. १७५३	भाद्र. १७५५	आषा. १७५८	ज्ये. १७६१	आश्वि. १७६३	श्राव. १७६६	ज्ये. १७६९

वैशा. १७७२	भाद्र. १७७४	आषा. १७७७	ज्ये. १७८०	आश्वि. १७८२	श्राव. १७८५	ज्ये. १७८८
वैशा. १७९१	भाद्र. १७९३	आषा. १७९६	ज्ये. १७९९	आश्वि. १८०१	श्राव. १८०४	ज्ये. १८०७
चैत्र. १८१०	भाद्र.१८१२	आषा. १८१५	ज्ये.१८१८	आश्वि. १८२०	श्राव. १८२३	ज्ये. १८२६
चैत्र. १८२९	श्राव. १८३१	आषा. १८३४	वैशा. १८३७	भाद्र.१८३९	श्राव. १८४२	ज्ये. १८४५
चैत्र. १८४८	श्राव.१८५०	आषा. १८५३	वैशा. १८५६	भाद्र. १८५८	श्राव. १८६१	ज्ये. १८६४
चैत्र. १८६७	श्राव. १८६९	आषा. १८७२	वैशा. १८७५	भाद्र. १८७७	श्राव. १८८०	ज्ये. १८८३
चैत्र.१८८६	श्राव. १८८८	आषा. १८९१	वैशा. १८९४	भाद्र. १८९६	आषा. १८९९	ज्ये. १९०२
आश्वि. १९०४	श्राव. १९०७	ज्ये. १९१०	वैशा. १९१३	भाद्र. १९१५	आषा. १९१८	ज्ये. १९२१
आश्वि. १९२३	श्राव. १९२६	ज्ये. १९२९	वैशा. १९३२	माद्र. १९३४	आषा. १९३७	ज्ये. १९४०
आश्वि. १९४२	श्राव. १९४५	ज्ये. १९४८	चैत्र. १९५१	भाद्र. १९५३	आषा. १९५६	ज्ये. १९५९
आश्वि. १९६१	आषा. १९६४	ज्ये. १९६७	फाल्गु.१९६९	श्राव. १९७२	आषा. १९७५	वैशा. १९७८
भाद्र. १९८०	आषा. १९८३	ज्ये. १९८६	फाल्गु.१९८८	श्राव. १९९१	आषा. १९९४	वैशा. १९९७
भाद्र. १९९९	आषा. २००२	ज्ये. २००५	फाल्गु. २००७	श्राव.२०१०	आषा.२०१३	वैशा.२०१६
भाद्र. २०१८	आषा.२०२१	ज्ये.२०२४	आश्वि. २०२६	श्राव.२०२९	आषा..२०३२	वैशा.२०३५
भाद्र. २०३७	आषा. २०४०	वैशा.२०४३	भाद्र. २०४५	श्राव.२०४८	ज्ये.२०५१	वैशा.२०५४
भाद्र. २०५६	आषा. २०५९	ज्ये. २०६२	भाद्र.२०६४	श्राव.२०६७	ज्ये.२०७०	वैशा.२०७३

द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैर्दिनैः पोडशभिस्तथा ।
घटिकानां चतुष्कोञ्च पतति ह्यधिमासकः ।

अथ क्षयमासः सिद्धान्तशिरोमणौ-

असङ्क्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद् , द्विसङ्क्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित् ।
क्षयः कार्त्तिकादित्रये नान्यतः स्या , तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च ॥

शुक्ल प्रतिपदा से अमावास्या तक जिस चान्द्रमास में सूर्य की राशि संक्रान्ति नहीं होती है, उस चान्द्रमास को अधिमास और अमा के अन्दर दो रवि की संक्रान्ति होने पर क्षयमास होता है। यह क्षयमास कभी-कभी ही होता है, वह भी कार्तिक से ३ मास के अन्दर ही क़ार्तिक, मार्गशीर्ष व पौष में। उस वर्ष में क्षयमास के पूर्व व पर में दो अधिमास होता है।

गतोऽब्ध्यद्रिनन्दैर्मिते शाककाले , तिथीशैर्भविष्यत्तथाङ्गाक्षसूर्यैः ।
गजाद्यग्निभूभिस्तथा प्रायशोऽयं , कुवेदेन्दुवर्षैः क्वचिद्गोकुभिश्च ॥

क्षयमासचक्र

आश्विन	आश्विन	माश्विन	फाल्गुन	कार्तिक	मार्ग	कार्तिक	फाल्गुन	फाल्गुन	अभिमास
१६०३	१७४४	१८८५	१९०४	१९५०	१९६९	२००७	२०२६	२०४५	शक
मार्ग	मार्ग	मार्ग	पौष	मार्ग	मार्ग	कार्तिक	मार्ग	पौष	क्षपमास
१६०३	१७४४	१८८५	१९०४	१९५०	१९६९	२००७	२०२६	२०४५	शक

यह क्षयमास श्रीभास्कराचार्य के अनुसार ९७४ शक-काल में बीत चुका है। पुनः = १११५, १२५६, १३७८ शकों में होने वाला है। प्रायः यह क्षयमास १४१ वर्षों में अथवा कभी-कभी १९ वर्षों में भी हो सकता है।

द्विवेदिकुलसम्भूतसरयूकृतसङ्ग्रहे।
शिरोमणौ समाप्तैषा प्रथमेयं प्रभा शुभा ॥

टिप्पणी - सूर्यसिद्धान्त के अनुसार क्षय-दिन की सारणी की युक्ति- कल्प चान्द्र-दिन में कल्प क्षय-दिन से भाग देने पर लब्धि एक क्षय-दिन सम्बन्धी चान्द्र-दिन की संख्या होगी। यथा

कल्प-चान्द्र-दिन १६०२९९९६० कल्प-क्षय-दिन २५०८२५५४० = ६३/५४/३२ इत्यादि एक क्षय-दिन में चान्द्रदिन की संख्या होगी।

॥ इति श्रीसङ्ग्रहशिरोमणौ अयनादिकथनं नाम प्रथमा प्रभा ॥१॥

अथ तिथिविचारो मुहूर्त्तगणपतौ -

प्रतिच्च द्वितीया च तृतीया तदनन्तरम् ।
चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी सप्तमी चाष्टमी तथा ।।१।।

नवमी दशमी चैवैकादशी द्वादशी ततः ।
त्रयोदशी ततो ज्ञेया ततः प्रोक्ता चतुर्दशी ।
पौर्णिमा शुक्लपक्षे तु कृष्णपक्षे त्वमा स्मृता ।।२।।

अथ तिथीशानाह श्रीपतिः -

तिथिपाश्चतुर्मुखविधातृविष्णवो , यमशीतिदीधितिविशाखवज्रिणः ।
वसुनागधर्मशिवतिग्मरश्मयो , मदनः कलिस्तदनु विश्व इत्यपि ।।३।।

तिथौ हि दर्शसंज्ञके पितृनुसन्त्यधीश्वरान् ।
त्रयोदशीतृतीययोः स्मृतस्तु वित्तपो परैः ।।४।।

अन्य किरणाख्य ग्रन्थों के अनुसार ब्रह्मा, प्रजापति, विष्णु, यम, चन्द्रमा, विशाख (अग्नि), इन्द्र, वसु (रत्नों के स्वामी का नाम वसु है), नाग, धर्म, शिव, सूर्य, मदन (कामदेव), कलि, विश्वेदेव व अमा का पितर, ये क्रम से प्रतिपदादि तिथियों के देवता हैं। त्रयोदशी व तृत्तीया का स्वामी वित्तप (कुबेर) भी है

पौराणिकानां मते तु तत्रैव -

वह्निर्विरिञ्चो गिरिजा गणेन्द्रः , फणी विशाखो दिनकृन् महेशः ।
`दुर्गान्तको विश्वहरी स्मरश्च , शर्वः शशी चेति पुराणदृष्टाः ।।५।।

पौराणिक मत से तिथियों के स्वामी अग्नि, ब्रह्मा, पार्वती, गणेश, सर्प, कार्तिकेय (विशाख), सूर्य, शिव, दुर्गा, यम, विश्वेदेव, हरि, काम, शिव व चन्द्र ये प्रतिपदा से पूर्णिमा तक की तिथियों के स्वामी हैं ।।५।।

अथ तिथीनां नामान्तराणि रत्नमालायाम् -

वृद्धिः सुमंगलपदा च बला खला च , लक्ष्मीवती त्वथ यशा परतश्च मित्रा।
तद्वद्बला सुमहती तिथिरुग्रकर्मा , स्याद्धर्मिणी प्रतिपदादि तथैव नन्दा ।।६।।

तिथि-चक्र

तिथि	संज्ञा	स्वामी
१	वृद्धि	अग्नि
२	सुमंगला	ब्रह्मा
३	वला	गौरी
४	खला	गणेश
५	लक्ष्मीवती	सर्प
६	यशा	स्वामिकार्तिक
७	मित्रा	रवि
८	बला	शिव
९	महती	दुर्गा
१०	उग्रकर्मा	यम
११	धर्मिणी	विश्वेदेव
१२	यशोवती	हरि
१३	जया	काम
१४	उग्रा	शिव
१५	सौम्या	चन्द्र
३०	घोरा	पितर

राष्ट्रोपनिषत्

रचयिता

स्व. आचार्य डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर विद्यालङ्कारः

(महामहिम–राष्ट्रपति–सम्मानित)

हिन्दी-रूपान्तरण-कर्त्री

सौ. श्रीमती इन्दु शर्मा

एम.ए., शिक्षाचार्या

अंग्रेजी-रूपान्तरण-कर्त्ता

महामण्डलेश्वरः स्वामी श्री ज्ञानेश्वरपुरी

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थानम्, जयपुरम्

नारी चेत् स्वयमात्मानं, सद्यः परिचिनो तु हि ।

प्रचण्डा चण्डिका भूत्वा, दुष्टानेव विनाशयेत ॥२४७॥

यदि नारी स्वयं आपको तत्काल पहिचान ले तो वह प्रचण्ड चण्डिका बन कर दुष्टों को ही विनष्ट कर डाले ।

If a woman would recognise herself immediately, then she would destroy the wicked like the raging moon.

नारी विश्व –प्रतिष्ठैका, तां विना पुरुषो नहि ।

नारी–पुरषयोरैक्यं, विश्वकल्याणकारकम् ॥२४८॥

नारी विश्व की एक प्रतिष्ठा है । उसके बिना पुरुष नहीं । नारी और पुरुष की एकता विश्व का कल्याण करने वाली होती है ।

Woman is a base of the world, not the man. The prosperity of the world lies in the unity of a woman and a man.

नास्ति कालात् परः कश्चित्, कालो हि सर्वतो महान् ।

उत्पत्ति – प्रलयौ तस्माद्, भवतो नात्र संशयः ॥२४९॥

काल से बढ़ कर कोई नहीं है । काल ही सबसे महान् है । उस काल से ही उत्पत्ति और प्रलय होते हैं । इसमें सन्देह नहीं है ।

Nobody is higher than the Time. Time is the greatest. There is no doubt that from Time everything is created and in it all is destroyed.

नास्ति ज्ञानं विना मुक्तिर्, ज्ञानं पुस्तक–संस्थितम् ।

पुस्तक – क्षति – कर्त्तारः, सर्वज्ञान–विलोपकाः ॥२५०॥

ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं है और ज्ञान पुस्तकों में रहता है । पुस्तकों को क्षति करने वाले तो सारे ज्ञान का लोप करने वाले बन जाते हैं ।

There is no freedom without knowledge. Knowledge is in the books. Those who destroy the books became annihilators all knowledge.

नास्ति मातृसमा काचित्, सुखशान्ति–प्रदायिनी ।

तामनादृत्य कः स्वस्य, सुखं शान्तिं हिनस्ति न ? ॥२५१॥

माँ के समान सुख–शान्ति दायक कोई नहीं है । उस माँ का अनादर करके कौन अपनी सुख शान्ति को नष्ट नहीं करता हैं ?

Nobody can give peace and happiness like a mother. Who does not destroy his peace and happiness by not showing her respect?

नास्ति स्त्री–सदृशी काऽन्या, सहिष्णुश्च दयावती ।

परार्थमेव जीवन्ती, सर्वदा सा हि तुष्यति ॥२५२॥

स्त्री के समान कोई दूसरी वस्तु सहनशील और दयावान् नहीं है । दूसरों के लिये सदा ही जीती हुई वह सन्तुष्ट रहती है ।

There is nobody as tolerant and kind as a woman. She lives for others and is always satisfied.

नास्तीश्वर–समः कश्चित्, कष्टात् त्रातुं बली महान् ।

अतो नित्यं स आराध्यः, पूज्यो वन्द्यः पुनः पुनः ॥२५३॥

ईश्वर के समान कोई कष्ट से बचाने के लिये महान् बली नहीं है । अतः नित्य उसकी पुनः पुनः आराधना, पूजा और वन्दना करनी चाहिये ।

There is nobody more powerful than God who can save (one) from the troubles. Therefore, worship, prayer and respect should be constantly given to God, again and again.

विविध साहित्यिक गतिविधियाँ

ISSN : 2582-6360

प्रकाशक : विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान - कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Website : vgda.in **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org